जम्मू–कश्मीर का हिन्दी अनुदित रंगकर्म

जब हम जम्मू–कश्मीर में हिन्दी रंगकर्म की बात करते हैं तो इसका तात्पर्य न केवल हिंदी में लिखित बल्कि कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उर्दू, बंगला, मराठी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं से हिन्दी में अनूदित नाटक स्वतः ही अध्ययन का विषय बन जाता हैं जिन्होंने जम्मू–कश्मीर के रगंकर्म को समृद्ध किया है। सम्पूर्ण भारत की भांति जम्मू–कश्मीर में भी सुनियोजित रंगमंच से पहले लोक–नाटकों की ऐतिहासिक परम्परा रही है। भांड पाथर, जागरण, भगतां, हरण, रासलीला, रामलीला का खूब प्रचलन रहा है क्योंकि इन लोक नाटकों के लिए किसी विशेष रंगमंच या अधिक साज–सज्जा की आवश्यकता नहीं होती। खुले मैदानों तथा चौराहों पर कलाकार अपनी कला के प्रदर्शन द्वारा लोगों का ध्यान आकर्षित करते आए हैं। इन लोक नाटकों का सम्बन्ध यहां के लोक जीवन, लोगों की रुचि तथा संवेदना से रहा है। जम्मू–कश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह के राज्य काल में 'रघुनाथ नाट्य कम्पनी' की स्थापना तो हुई किंतु पूरी तरह यह नाट्य कम्पनी महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल में सक्रिय हुई। यहां तक कि महाराजा हरि सिंह के मुंडन संस्कार पर मुंबई की पारसी रंग कम्पनी विक्टोरिया को राजा ने यहां बुलाया था। जम्मू के मुबारक मण्डी के ग्रीन हाल में कई दिन नाटकों का प्रदर्शन होता रहा। इन पारसी नाटकों से प्रभावित होकर यहां ऐमेच्योर थियेटर ग्रुप की स्थापना हुई जिसने 'चन्द्रावली', 'जानकी मंगल', 'रामायण नाटक', 'भीष्म प्रतिज्ञा' आदि नाटकों का मंचन किया। यही नहीं पारसी रंगमंच के प्रभाव स्वरूप अनेक रंगमंचीय क्लबों की स्थापना हुई जिन्होंने आगा हश्र कश्मीरी, राधेश्याम कथावाचक के अनेक नाटकों का मंचन किया। धीरे–धीरे रंगकर्मियों की संख्या बढ़ती गई। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व देश प्रेम की भावना जगाने के लिए 'इप्टा' ने भी कई नाटकों का यहां

मंचन किया। 1952 में सुधार समिति के कलाकारों ने सुदामा कौल द्वारा लिखित 'कश्मीर हमारा है' नाटक खेला। लगभग सौ प्रस्तुतियाँ इस नाटक की हुई हैं। 1958 में जम्मू–कश्मीर कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी की स्थापना ने साहित्य की प्रत्येक विधा के साथ–साथ रंगमंच के क्षेत्र में भी क्रान्ति ला दी। जम्मू–कश्मीर के रंगमंच को समृद्ध बनाने में यहां के नाटककारों, नाट्य निर्देशकों, जम्मू–कश्मीर कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी, नाट्य संस्थाओं तथा अन्य शैक्षणिक तथा सांस्कृतिक संगठनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

जम्मू–कश्मीर कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी प्रदेश के तीनों भागों (जम्मू–कश्मीर व लद्दाख) में भाषा, संस्कृति और कलाओं को समृद्ध बनाने में सक्रिय रही है। जम्मू को छोड़कर प्रदेश के बाकी दो हिस्सों में हिन्दी नाटक और रंगमंच की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। कश्मीर में 1970–80 का दशक हिन्दी नाटक और रंगमंच के लिए सुनहरा रहा है। इस दौर में अन्य भारतीय भाषाओं के हिन्दी में रूपान्तरित तथा अनुदित महत्वपूर्ण नाटक मंचित होते रहे हैं जैसे मोतीलाल क्यमू के नाटक 'त्रिनाम', 'शाप' तथा 'नगर उदास' । ये तीन नाटक मूल रूप से कश्मीरी भाषा में हैं इनका अनुवाद पंडित गौरीशंकर रैना ने किया है। यह नाटक लोक नाट्य शैली भांड पत्थर पर आधारित है। इसके अतिरिक्त 'एक ओर द्रोणाचार्य', 'रक्तबीज'(शंकर शेष), 'सन्तोला'(मुद्राराक्षस), 'जुलूस', 'बाकी इतिहास'(बादल सरकार), 'हत्या एक आकार की'(ललित सहगल), 'कोणार्क'(जगदीशचंद्र), 'खामोश अदालत जारी है' (विजय तेंदुलकर) 'नदी प्यासी थी', 'रजनीगंधा' 'पागल कौन', तथा 'गॉदो के इन्तजार में' (सैम्युल बेकेट) आदि नाटकों के सफल प्रदर्शन हुए हैं। किंतु कश्मीर का रंगकर्म 1989 में हुए विस्थापन तथा आतंकवाद की दहशत के

कारण थम सा गया। पिछले कई वर्षों से यहां हिन्दी नाटक और रंगमंच ना के बराबर है। ऐसा नहीं है कि कश्मीर में नाट्य मण्डलियों या निर्देशकों की कमी है यहां आज भी ऐय्याश आरिफ, अशोक जेलखानी तथा मुश्ताक अली अहमद खां जैसे प्रसिद्ध निर्देशक हैं जो रंगमंच को आगे बढ़ाने के लिए प्रयासरत हैं। रंगकर्मी ऐय्याश आरिफ रंगमंच को कश्मीर के लोगों के लिए अति आवश्यक समझते हैं "उनके अनुसार कश्मीर पर्यटक स्थल है। यहां पूरे हिन्दुस्तान से ही नहीं दुनियां भर के पर्यटक आते हैं। उनके मनोरंजन के लिए यहां कुछ भी नहीं है। यदि कुछेक स्थलों पर नाट्क खेले जाएं तो इन लोगों का मनोरंजन भी होगा और यहां के लोगों के साथ–साथ कलाकारों को भी उनकी खुराक मिल जाएगी"[2] लेकिन विपरीत परिस्थितियों के कारण हिन्दी रंगमंच यहां नहीं हो पा रहा है इसका यहां के रंगकर्मियों को दुख भी है।

लद्दाख में महीप उत्सल जैसे 'नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' से प्रशिक्षित नाट्य निर्देशक हैं, जम्मू–कश्मीर कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी की शाखा यहां सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए प्रयासरत है किन्तु हिन्दी नाटक यहां कोई नहीं खेला गया। ऐसा भी नहीं है कि यहां के लोग हिन्दी भाषा समझना या बोलना नहीं जानते। हिन्दी यहां सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग में लाई जाती है फिर भी हिन्दी नाटकों का मंचन नहीं हो पाता। हां कहीं–कहीं स्कूलों में छुटपुट प्रयास अवश्य होते रहते हैं। लद्दाख केवल चार मास ही देश के बाकी हिस्सों से जुड़ा रहता है। शेष मास यहां भारी बर्फ बारी रहती है। अतः उन चार महीनों में एक–आध प्रस्तुति तो हो सकती है जबकि ऐसा नहीं हुआ। लद्दाख के लोगों से सम्पर्क करने पर मालूम हुआ कि वे लोग सजग हैं, इच्छुक भी हैं क्योंकि नाटक केवल मनोरंजन ही नहीं करता बल्कि देश दुनिया तथा तत्कालीन समाज की ज्वलन्त समस्याओं से भी रुबरु करवाता है। अकादमी या अन्य

नाट्य संस्थाएं यदि हिंदी नाटक करने के लिए आगे आएं तो दर्शकों की कमी नहीं है। मई से लेकर सितम्बर तक पर्यटक भी वहां बहुत होते हैं जिनके लिए यदि नाटक जैसा जीवन्त और मनोरंजनकारी उपक्रम आरम्भ किया जाए तो यकीनन सफलता प्राप्त होगी।

प्रदेश के कश्मीर तथा लेह की तुलना में जम्मू का रंगकर्म अधिक सक्रिय और समृद्ध है। यहां बहुत से राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त रंगकर्मी, नाट्य–निर्देशक जैसे कविरत्न, मोती लाल क्यमू, बलवन्त ठाकुर, मुश्ताक काक, कुमार अ. भारती, तपेश्वर दत्ता, दीपक कुमार, सुधीर महाजन, विजय गोस्वामी, इफरा काक, सुमित शर्मा, सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् तथा रजनीश कुमार गुप्ता सक्रिय हैं। सभी रंगकर्मी किसी न किसी नाट्य मण्डली तथा नाट्य संस्था से जुड़े हैं जैसे बहुरंगी नाट्य संस्था, नटरंग, आमेच्युर थियेटर ग्रुप, रंग युग, नटराज नाट्य कुंज, थियेटर मित्रा, शिवानी कल्चरल सोसाइटी, समूह नाट्य संस्था, रंगशाला, दा परफार्मर, अजेका, रूपवानी कला मन्दिर, पचंम थियेटर, विराट कल्चरल सोसाइटी, रंगोली प्रोडक्शन, द रिफ्लैक्स प्रतिभा आदि। नाट्य संस्था 'बहुरंगी' के संस्थापक एन.एस.डी. प्रशिक्षित कविरत्न ने अनेक लोकप्रिय हिन्दी नाटकों का मंचन किया है जिनमें 'खामोश अदालत जारी है', 'आधे अधूरे', 'पंछी ऐसे आते हैं', 'पगला घोड़ा', 'स्पार्टकस', 'कागज की दीवार', 'थैंक्यू मिस्टर गलाड', 'भूखे भजन न होए', 'रीड की हड्डी', 'शुर्तुमुर्ग', 'बेगम का तकिया' आदि प्रमुख हैं। बलवंत ठाकुर की नाट्य संस्था नटरंग द्वारा मंचित हिन्दी नाटक इस प्रकार हैं — 'फंदी', 'पोस्टर', 'रक्तबीज', 'नीली झील', 'सिंहासन खाली है', 'चरणदास चोर', 'कबीर खड़ा बाज़ार में', 'एक था गधा', 'अंधों का हाथी', 'सईया भये कोतवाल', 'नींद क्यों रात भर नहीं आती', 'मरणोपरान्त' आदि। मुश्ताक काक का अमेच्युर थियेटर ग्रुप प्रयोगधर्मी

कलाकारों का है जिन्होंने बहुत से हिन्दी के चर्चित नाटकों के साथ–साथ दूसरी भाषाओं के अनुदित नाटकों का भी मंचन किया है । 'अंत हाजिर हो', 'बकरी', 'प्रतिबिम्ब', 'लोटन', 'धुंध के घेरे', 'आधी रात के बाद', 'अंधेर नगरी', 'अंधा युग' 'दो कोड़ी का खेल', तथा 'डेरियो फो' के प्रसिद्ध नाटक 'एक्सीडेंटल डैथ' जिसका रूपान्तरण 'एक और दुर्घटना' शीर्षक से अमिताभ श्रीवास्तव ने किया, जिसका मंचन अनेक बार हुआ। यह संस्था सिर्फ जम्मू तक ही सीमित नहीं है बल्कि अन्य राज्यों में भी नाट्य प्रदर्शित करती आई है। इनके नाटक देश के अन्य भागों में हो रहे नाट्य महोत्सवों में प्रस्तुत होते हैं। रंगयुग नाट्य संस्था के निर्देशक दीपक कुमार द्वारा मंचित प्रमुख हिन्दी नाटक हैं — 'आधे अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन', 'पोस्टर', 'रक्तबीज', 'एक था गधा', 'मरणोपरान्त', 'हत्या एक आकार की', 'सूर्य की अन्तिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक' आदि। इस संस्था ने फ्रेंच भाषा के 'वेटिंग फार गॉदो' का मंचन किया, जिसका हिन्दी में अनुवाद कृष्ण बलदेव वैद ने किया। इस नाट्य संस्था ने जम्मू में पहली बार 'इन्टीमेट थियेटर' की शुरूआत की थी। रंगयुग के संस्थापक दीपक कुमार के अनुसार इन्टीमेट थियेटर में दर्शकों को मंच पर ही बिठा दिया जाता है ताकि वे नाट्य कर्मियों की हर हरकत को करीब से देख सकें। 1991 में 'आधे अधूरे' का मंचन इस संस्था ने इसी प्रणाली से किया था। 'नटराज नाट्य कुंज' के निर्देशक कुमार अ. भारती ने 'पासपोर्ट', 'कबीरा खड़ा बाज़ार में', 'गुडबाय स्वामी', 'इन्सानियत', 'फंदी' तथा 'अंत हाजिर हो' 'गगन दमामा बाजयो', 'मिस्टर अभिमन्यु, 'सूरज कत्ल नहीं होते' आदि नाटकों का मंचन किया।

सुधीर महाजन की समूह नाट्य संस्था ने 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'डाकघर', 'गुड बाय स्वामी', 'सिंहासन खाली है', 'अंधा युग', 'बाकी इतिहास',

'तीसवीं शताब्दी', 'एक सौ एकवां कौरव', आदि नाटकों का मंचन किया। इसके साथ ही संस्था ने मराठी 'सैया भये कोतवाल' और संस्कृत नाटक 'मत्त विलास' और 'मृच्छकटिकम' का हिन्दी में मंचन किया। यहां के रंगमंच को आगे बढ़ाने में थियेटर मित्रा ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। संजय कपिल के निर्देशन में इस संस्था ने 'ताजमहल का टेंडर', 'सखा राम बाइंडर', 'राजा नंगा', 'चौराहा', 'एक ओर एक ग्यारह', 'देश के लिए', 'बाढ़ का पानी', 'राक्षस' आदि खेले हैं। विक्रम शर्मा की शिवानी कल्चरल सोसाइटी द्वारा 'महासमर', 'एक ओर द्रोणाचार्य', 'बाकी इतिहास', 'अंत नहीं', 'एक सपने की मौत', 'कलिगुल्ला', 'कहां हो फकीर चन्द', 'महानिर्वाण' तथा अंग्रेजी नाटक औथेलो क सफल मंचन किया गया। रंगमंच को गतिशील बनाए रखने के लिए उक्त सब संस्थाओं, निर्देशकों के प्रयास सराहनीय हैं किन्तु ये संस्थाएँ नाटक के लिए दर्शक नहीं पैदा कर पाईं।

नटरंग के संस्थापक बलवन्त ठाकुर ने जम्मू के रंगकर्म को क्षेत्रीय दायरे से बाहर निकालकर अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक ख्याति दिलायी है जो किसी भी राज्य के लिए गौरव का विषय है। इनके निर्देशन में 'नटरंग' नाट्य संस्था कच्ची छावनी, जम्मू में साप्ताहिक नाट्य श्रृंखला के अन्तर्गत हर रविवार को एक नाटक करवाती है। प्रत्येक सप्ताह स्थानीय समाचार पत्रों में इनके नाट्य प्रदर्शन का समाचार छपता है। उसी से ज्ञात होता है कि अमुक नाटक खेला गया। नटरंग के नाट्य प्रदर्शनों में उनके अपने बंधे बंधाये कलाकार लोग तथा मुख्य अतिथि बाहर का कोई आमंत्रित व्यक्ति ही नाट्य–प्रस्तुति में मौजूद रहता है। आजकल सोशल मीडिया पर नाट्य प्रदर्शन की सूचना दे दी जाने लगी है किन्तु यह सूचना भी कम लोगों तक ही पहुंचती है। इस प्रकार के नाट्य प्रदर्शन दर्शक वर्ग से कोसों दूर ही रहते हैं। मर्मज्ञ दर्शकों की कमी भी यहां

नहीं है किन्तु निमंत्रण या कहीं इसका प्रचार ही नहीं होता। ऐसे में दर्शक कहां से आएगा। बहुत सी संस्थाएं या तो वार्षिक महोत्सवों में अपनी प्रस्तुतियां देतीं हैं या नाटक मंचन की सूचना समाचार पत्र से प्राप्त करवा देतीं हैं। जो थियेटर ग्रुप मंचन का प्रचार–प्रसार करते हैं, उनके वहां नाट्य प्रेमी दर्शकों की भीड़ भी देखी गयी है।

जम्मू–कश्मीर में नाटककार तथा निर्देशक दोनों की नाटक को लेकर अवधारणाएं अलग–अलग हैं। कुछ एक वरिष्ठ निर्देशकों का यह मानना है कि यहां के हिन्दी नाटककारों में मौलिकता की कमी है और ऐसे नाटक रंगमंच की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकते जो केवल पाठक को ध्यान में रखकर लिखे गए हों। प्रसिद्ध रंगकर्मी बलवन्त ठाकुर ने अपने साक्षात्कार में प्रखर शब्दों में कहा "कि स्थानीय नाटकों का स्तर नहीं है इसलिए सतही नाटकों का मंचन मैं नहीं कर पाता। उन्हें नाट्य रूपान्तरों, अनूदित नाटकों तथा विदेशी भाषा के नाटक लेने पड़ते हैं।"[3] जयशंकर प्रसाद के नाटक रंगमंच को ध्यान में रखकर तो नहीं लिखे गये थे। बहुत कठिन मंचीय व्यवस्था के होते हुए भी ब.ब. कारन्त ने उनकी कई–कई प्रस्तुतियां की हैं। कुछ कांट–छांट के बाद अन्य कई निर्देशकों ने भी उन्हें खेला है। अतः बिना प्रयास के यह मत बना लेना कहां तक उचित है कि यहां का हिन्दी नाटक स्तरीय नहीं है। यहां मौलिक नाटक उठाने के लिए निर्देशक और रंगकर्मी न तो सार्थक पहल करने को तैयार हैं और न ही परिश्रम। परिणामतः यहां का हिन्दी नाटककार निराशा की स्थिति से गुजर रहा है जबकि हिन्दी नाट्य–लेखन की स्थिति अधिक निराशाजनक भी नहीं है। सब के सब नाटक खराब भी तो नहीं हैं कि परिष्कार करके भी खेले नहीं जा सकते।

जम्मू–कश्मीर के नाटककार हिन्दी प्रदेश के नाटककारों की तरह आकर्षक, प्रासंगिक या सम्भावनापूर्ण नाट्कीय विचार–विवेचन में अधिक सक्षम तो नहीं हैं पर वे यहां के हिन्दी नाटक और रंगमंच को समृद्ध बनाने का प्रयास अवश्य कर रहे हैं और भारतीय सामाजिक संदर्भों को अपनी लेखनी से अभिव्यक्ति देने में अपने सामर्थ्य का परिचय देने में लगे हुए हैं। इन नाटककारों ने समाज की प्रत्येक समस्या जैसे — पारिवारिक विघटन, स्त्री–शोषण, दलित–शोषण, वैयक्तिक स्वार्थ से प्रेरित सम्बन्धों में बिखराव की स्थिति, राजनीति और व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की नीतियों से अवगत करवाने का यथासम्भव प्रयास किया है। स्वार्थ प्रवृत्ति से प्रभावित व्यक्ति, अर्थ की अंधी दौड़ में लगे माता–पिता, नारी की स्वच्छन्द मानसिकता, वैवाहिक जीवन में बढ़ती घुटन और दूरी को डॉ. सुधीर महाजन, सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् तथा शिवदेव मन्हास के नाटकों में देखा जा सकता है। इन नाटकों में स्त्री शोषण तथा संघर्ष के प्रत्येक पहलू, उसके दुख–दर्द, वर्जनाओं के अनेक स्तरों को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। ओम गोस्वामी का 'सफेद चील', 'अंधेर नगरी का जालिम गरीब', डॉ. सुधीर महाजन का 'बेटी नहीं चाहिए', 'वो जो खो गया', सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् का 'हां पिता जी', 'धुंध के घेरे', रजनीश कुमार गुप्ता का 'मेरे अपने' जैसे नाटक उक्त समस्याओं को लेकर लिखे गये हैं। इनमें स्त्री संघर्ष और उसके जीवन की दयनीय स्थिति के साथ–साथ पितृसत्तात्मक समाज के घिनौने सच से रु–ब–रु करवाने का प्रयास भी किया गया है। इन नाटककारों ने समसामायिक परिवेश में राजनीति तथा व्यवस्था तंत्र के भ्रष्टाचारी तथा षड्यन्त्रकारी रूप को सामने लाया है। छत्रपाल के 'तैराक', वरुण सुथरा का 'रास्ते और भी हैं', सुतीक्ष्ण कुमार आनन्दम् के 'मगर यह सच है', 'ताकन लागे काग', 'हां पिता जी' आदि नाटकों में स्वहित में लगी संस्थाओं की पोल खोली गई है। साथ ही इन नाटककारों ने समाज

में हाशिये पर फैंके गये दलितों, शारीरिक व मानसिक रूप से आसामान्य व्यक्ति की पीड़ा को भी उजागर किया है। इस संदर्भ में बलजीत रैणा का नाटक 'एक और प्रेम कथा', रजनीश कुमार गुप्ता के 'कठपुतलियां', 'प्रश्नचिन्ह' तथा वरुण सुथरा का 'हम ऐसे क्यों हैं' आदि नाटक देखे जा सकते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि यहां के हिन्दी में लिखित नाटकों के कथ्य प्रभावी हैं किन्तु वर्तमान की अनेक ज्वलन्त समस्याएं जिन के कारण यह राज्य प्रभावित हुआ है, वे नाटकों में दिखाई नहीं देतीं। विभाजन का दंश इस राज्य ने झेला और आज आज़ादी के लगभग पचहत्तर वर्षों के बाद भी उस दंश की पीड़ा हर घड़ी यहां के लोग झेलते हैं इस पर नाटककारों की दृष्टि नहीं गई। आतंकवाद का मुद्दा भी नाटकों में लगभग नहीं दिखाई देता जबकि ये ऐसी समस्याएं हैं जो मंच–प्रस्तुति के कारण अधिक प्रभावी साबित हो सकती हैं। मुख्यधारा का हिन्दी नाटक स्वातन्त्र्योत्तर भारत की विसंगतियों को बेनकाब करने के लिए व्यवस्था से सीधा टक्कर लेता दिखाई देता है जबकि इस प्रदेश का नाटककार इस दृष्टि से पिछड़ा हुआ है।

नाटक में रंगशिल्प की अभिव्यक्ति दो बार होती है। नाटककार की अभिव्यक्ति पाठ्य संरचना के अन्तर्गत आती है जबकि निर्देशक की अभिव्यक्ति रंगमंचीय उपकरण कहलाती है जो कभी–कभी नाटककार की अभिव्यक्ति से कुछ भिन्नता लिए भी हो सकती है। यदि हम नाट्यमंचन की बात करें तो पाते हैं कि यहां के निर्देशक विदेशी भाषाओं जैसे अंग्रेज़ी, फ्रैंच, रशियन आदि के हिन्दी रूपान्तरों से काफी प्रभावित हैं। यहां शेक्सपियर्स के 'हेमलेट', 'जुलियस सीज़र' , डेरियो फो का 'एक ओर दुर्घटना', ब्रेख्त का 'दो कोड़ी का खेल', सेम्युल बेकेट का 'वेटिंग फॉर गॉदो' आदि की प्रस्तुतियाँ होती रहीं हैं। इसके

अतिरिक्त कश्मीरी, डोगरी, पंजाबी, उर्दू, बंगला, मराठी आदि भारतीय भाषाओं के हिन्दी अनुवादों को भी प्रस्तुत किया जाता है।

एक विडम्बना यह भी है कि यहां के निर्देशक नाटककारों के नाटकों की अक्सर अनदेखी कर जाते हैं और आसानी से उपलब्ध तथा लोकप्रिय अन्य भाषाओं के नाटकों को प्रस्तुत करते हैं। इसी कारण यहां के स्थानीय नाटककारों से उसका रिश्ता सहज नहीं हो पाया है। अच्छे, स्तरीय, मंचनीय नाटकों के सृजन के लिए रंगकर्मियों तथा नाटककारों के बीच नियमित, संरचनात्मक संवाद भी एक बहुत बड़ी आवश्यकता है जिसका यहां अभाव है। यदि दोनों पक्षों में इस तरह के संवाद कायम हो सकें तो उन्हें एक–दूसरे की दिक्कतों और जरूरतों को समझने में सहायता मिलेगी। नाट्य लेखन के स्तर को बढ़ाने की भी आवश्यकता महसूस होती है। यहां नाट्य लेखन के प्रशिक्षण की आवश्यकता है जिससे यहां के हिन्दी नाटक और रंगमंच का विकास हो सकेगा। दूसरा नाट्य संस्थाओं के निर्देशकों को भी नाट्य मंचन के लिए सरकारी सहायता मिलनी चाहिए क्योंकि बहुत सी ऐसी नाट्य संस्थाएं हैं जो नाट्य मंचन तो करना चाहतीं हैं लेकिन आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण वर्ष में केवल एक ही नाटक कर पातीं हैं। जम्मू–कश्मीर अकादमी संस्थाओं को कुछ राशि सहायतार्थ देती है जो बहुत कम है। यहां 'नटरंग' तथा 'एकता स्कूल ऑफ ड्रामा' ही ऐसी नाट्य–संस्थाएं हैं जो 'फुल टाईम रिपीटोरी' से अपनी संस्था चला रही हैं, यानि भारत सरकार से उन्हें अनुदान प्राप्त होता है और वर्ष भर नाट्य प्रस्तुतियों के लिए सक्रिय रहतीं हैं। जबकि अन्य संस्थाएं सरकारी अनुदान के अभाव के कारण अधिक सक्रिय नहीं रह पातीं। टिकट प्रणाली नहीं होने के कारण भी संस्थाएँ अधिक मंचन नहीं करतीं। यह भी कहा जाता है कि जम्मू का दर्शक नाटक के प्रति गम्भीर नहीं हैं, पैसे

देकर नाटक देखने वह नहीं आएगा। कुछेक निर्देशक टिकट सिस्टम को अनिवार्य मानते हैं। उनका कहना है कि नाटक–प्रेमी दर्शक इस विधा की जीवन्ततः को समझते हैं अतः वे जरूर आएंगे। यदि नाट्यकला का सही प्रयोग किया जाए तो मीडिया के तकनीकी सौन्दर्य के बावजूद रंगमंच की क्षमता स्वतः सिद्ध हो जाएगी। नाटक की जीवन्तता के समक्ष मीडिया का आकर्षण बेजान अनुभव साबित होगा ऐसा हमारा मानना है।

बहुत से निर्देशकों के साक्षात्कार द्वारा यह बात सामने आई कि हमारे यहां दर्शक नहीं हैं किंतु मेरा मानना है कि वास्तव में हम अभी तक दर्शकों के दिलों में अपनी जगह नहीं बना पाये हैं। दूसरा यहां नाटकों के मंचन का प्रचार सही समय पर नहीं हो पाता है और तीसरा यदि दर्शक किसी तरह मंचन देखने आ भी जाएं तो मुख्य अतिथि के हॉल में आने से पहले नाटक शुरू ही नहीं होता जिससे ऊबे दर्शक को कई बार तो प्रस्तुति देखे बिना ही लौटना पड़ता है। निर्देशकों को चाहिए कि वे नाट्य–प्रस्तुति में दर्शकों का पूरा ध्यान रखें क्योंकि दर्शक अपने–आप पैदा नहीं होता है बल्कि पैदा किया जाता है।

जम्मू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने तीन नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' (2013), 'जिस लाहौर नहीं देख्या ओ जम्याई नई' (2014) तथा 'नो मैन्स लैण्ड' (2015) जनरल जोरावर सभागार में करवाये। नाटकों का निर्देशन इफरा काक (जो वर्तमान में विश्वविद्यालय में कल्चरल ऑफिसर के रूप में कार्यरत हैं) ने किया। प्रत्येक प्रस्तुति में करीब पंद्रह सौ दर्शक सभागार में मौजूद थे। सब ने प्रस्तुतियों को सराहा। 'दर्शक नहीं हैं' निर्देशकों का यह कथन इन प्रदर्शनों ने सिरे से नकारा है। अपने प्रर्दशनों में हमने यह भी देखा कि यहां का दर्शक गम्भीर दर्शक है। प्रत्येक प्रस्तुति के बाद हमें यह पूछा जाता था —

'अगला नाटक कब करवा रहे हो'। अभी हाल ही में 'नागमंडल' नाटक जम्मू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा खेला गया जिसमें प्रचुर मात्रा में गम्भीर दर्शक मौजूद रहे। इसी प्रकार प्रत्येक वर्ष जम्मू–कश्मीर कला, संस्कृति तथा भाषा अकादमी नाट्य महोत्सवों का आयोजन करती है जिसमें अलग अलग नाट्य–संस्थाए बेहतरीन नाटकों का मंचन करती हैं। अतः जम्मू–कश्मीर में हिंदी रंगकर्म का भविष्य उज्ज्वल है।

संदर्भ

1. जितेन्द्र शर्मा, जम्मू में रंगमंचीय परंपरा उद्‌भव और विकास, हिंदी शीराजा,1977, अंकः 2–3 पृ.38
2. साक्षात्कार रंगकर्मी, ऐय्याश आरिफ, 2015
3. साक्षात्कार रंगकर्मी, बलवन्त ठाकुर, 2015

प्रो.(डॉ.) परमेश्वरी शर्मा